दीप-दान

(कविता-संग्रह)

लेखक—

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

प्रसीडेंट—गोपाल आर्टस कालेज, लाहौर

प्रकाशक—

वाणी-मंदिर

अस्पताल रोड, लाहौर।

प्रकाशक—
श्रीमती वैकुंठी देवी,
अध्यक्षा—वाणी-मंदिर
अस्पताल रोड, लाहौर।

सूची

औघट हुआ

तुझे नदीश मान दे
नदी, प्रदीप दान ले।

(मैथिली शरण गुप्त)

विद्रोहिणी !

तुम सुन्दर हो, क्या इसीलिये जब जितना चाहे, ऊधम मचाओगी ? बड़ी साधसे स्लेट लेकर मैं लिखने बैठा, तुमने पीछे से आकर पानी उड़ेल दिया। मैंने त्योरियाँ चढ़ाईं। पर पीछे जो मुड़ कर देखता हूँ तो मुँह का पल्ला हटा, तुम 'हा-हा हू-हू' करके हँस दीं, मैं भी हँस दिया।

❀ ❀ ❀

इस विशाल झील के चारों ओर बाँध बाँधते बाँधते मैं चूर हो गया। जाने, तुम कहाँ से आ टपकीं। मैंने कहा—ओ री ! देखती हो मेरे इन ऊँचे कगारों को, जिन्हों ने ठाठें मारती हुई जल-राशि को ऐसा नाग-पाश दे रखा है !

तुमने आँखें चौड़ी करके कहा—हाँ, क्या कहने हैं तुम्हारे जीवट के ! पर वह क्या है उस पार ? देखते नहीं, झील

की एक छोटी सी जलधारा, चोर बालिका की तरह, बाहर खिसक रही है !

मैंने चुटकी बजा कर जवाब दिया—उसको एक पाथी काफ़ी है । तुम ठहरती हो जरा, मैं उधर से निबट आऊँ ?

मै गया और आ गया । पर हाय यह क्या ! मेरे ऊँचे कगारों को तोड फोड़ कर तुम किधर भाग गईं ? पिटारी में धँसे क्रुद्ध सर्प की तरह वह जल-कल्लोल भर भर, भर भर कर के बाहर आ पड़ा । मैं उसे सम्हालूँ कि तुम्हे देखूँ ?

तब से मैं अपनी ही बाढ मे बह रहा हूँ । बह रहा हूँ, कुछ अंत नहीं । हाथ मैंने छोड दिये हैं । विवशता की झेंप लहरो के उल्लास मे डूब गई है ।

कितने वन-पर्वत, सम-विषम और तृण-तरुओं को लाँघ कर मैं आया हूँ । एक दिन तुम फिर नज़र आई, तुम्हे कुछ कहूँ कहूँ कि तुम्हारे मुँह का भाव देख कर मैं ठिठक गया । तुम्हारी आँखो की वह नट-खट हँसी आज सजल कैसे हो उठी ?

तुमने हाथ जोड कहा—मेरे प्रभु, मैं अपनी शरारत के

लिये मुआफ़ी माँगने आई हूँ, क्या इस टूट रहे रथ-चक्र को मैं अब बाँह नहीं दे सकती ?

मैं पा गया। जाओ सखी, एक दिन मेरे बाँध को देख कर तुम चकित हुई थीं—आज मेरे बहने का कौतुक देखो।

❀ ❀ ❀

मां !......... यह क्या ? मेरे अंतरतम ने आज यह कैसी बेतुकी पुकार मचाई है ! तुम्हारी बाँहों में मचल उठूं—ऐसा मुग्ध बालक एकाएक मुझे कौन बनाएगा ? तुम्हारी सजल दृष्टि का मृदु उपहार कितने रूपो में सजा—सँजो चुका हूँ, पर मां के रूप का आज मेरा अजीब हठ है ! पलक मारते, मेरे विश्वामित्र को किसने आज ब्रह्मर्षि बना दिया ?

तुम मेरी प्रेयसी हो कि मां ? इधर तुम्हारी छाती से ललक कर मिलने की ममता और उधर झिझक, हिचक, आगा-पीछा सभी कुछ तो है। तब तुम्हें क्या कहूँ ?

तुम बोलीं—क्या कहना ही आवश्यक है ?.......... और फिर तुम तो कह डालोगे—मैं क्या कहूँगी ? एक ओर तुम्हारे चरण चूम लेने की चाह और दूसरी ओर तुम्हारे 'रिस-समेत' मुख को लख कर हँसी व रीझ.........किस किस

को मैं कहूं और किस किस को मैं छुपाऊँ ? सो, रहने ही दो।

❀ ❀ ❀

आज मैं अपने हृदय का प्रदीप लेकर तुम्हारे सामने आया हूँ। जो कुछ कहना चाहता था, जिसे तुमने कभी खुल कर नहीं कहने दिया,मेरे मुँह पर अपनी शुभ्र शीतल हथेली रख कर सदा मोहर लगा दी-वही सब सजा कर आज ले आया हूँ। देखती नहीं—ठठिहारे ने लाख कोशिशें कीं, मेरा कूब नहीं निकला। तुम्हारे मार्ग का मैं स्निग्ध प्रकाश हूँ सही, पर मेरी इस लौ के तले कितना अँधेरा जमा है !

फिर भी मेरी बाती मे बल है। उसके भीतर की फ़ालतू रुई छँट चुकी है। तुम्हें और कुछ नहीं करना, बस, इसे स्नेह-हीन मत होने देना।

तुम्हारा—

कच्चा. सच्चा, बच्चा,
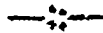
नटखट-उपहार

मैं रसातल को चला—मोती मिले तो
पंक में फिसला सही—शतदल खिले तो

तुम सदा झिझकी रहो, उझका रहूँ मैं
क्या तुम्हें उपहार दूँ, गलहार हूँ मैं

प्रिये, मैं कच्चा सही—सच्चा रहूँ मैं
तुम न मेरी माँ सही—बच्चा रहूँ मैं

तब न मेरी भूल पर तुम दृष्टि डालो
मधुर है वह भूल, अपने को न सालो

दान मेरे दीप का स्वीकार तो है
इस अँधेरे तले से कुछ प्यार तो है ?

—::—

दीया

एक मट्टी का ज़रा-सा पात्र हूँ
स्नेह की यह धार तुमने ढार दी
कूत्र मेरा देखकर भी क्यों, प्रिये,
हाथ की बाती उतार सँवार दी।

—::—

परिचय

मेरे मानस की गति-विधि का दुष्कर है अनुमान।

चञ्चल है कितना अन्तस्तल
वेग तरंगो का है पल पल
क्षुब्ध हो रहा है कितना जल
किंतु दीखता ऊपर से है कैसा शान्त समान।

रोता हूँ, भीतर जलता हूँ
सँभल सँभल पग पग चलता हूँ
पल पल हाथ मगर मलता हूँ
जाने फिर भी सदा नाचती कैसी यह मुसकान।

किसी स्पर्श से होता कम्पन
अर्पण हो जाऊं – होता मन
कौन कहे 'मुख मन का दर्पण' ?
यहाँ उपेक्षा भाव दिखा तब भी बनता अनजान।

वचनों के विष-शर सहता हूँ
क्षुब्ध, किन्तु चुप हो रहता हूँ
नहीं किसी से कुछ कहता हूँ
और सदा मीठी वाणी का देता हूं प्रतिदान।

व्याधि-ग्रस्त हूँ, स्वस्थ बना हूँ
स्वस्थ, व्याधि से ग्रस्त बना हूँ
निर्भय हूँ संत्रस्त बना हूँ
त्रस्त-चित्त हूँ पर मुख पर है साहस का उत्थान।

क्या कहते हो रोता हूँ मैं
मुक्ता—हार पिरोता हूँ मैं ?
सच पूछो, खुश होता हूँ मैं
रोकर ही तो कर पाया तव प्रेम–सुधा का पान।

—::—

कंगाल

आज मेरे पास क्या है?

एक वह भी था जमाना डाल पर खग बोलता था
डोलता था मस्त हो, रस एक स्वर मे घोलता था
चहक उठता साथ मैं घंटों खड़ा ललकारता था
और उस कोयल परी की गाँठ उर की खोलता था।

मैं समझता अर्थ जब
वह मौन होकर सिर उठाती,
आज मेरे पास क्या है!

एक वह भी था ज़माना छेड़ता मृदु तार कोई
तड़पकर इस हृदय से थी निकलती झंकार कोई
मैं चिहुँक कर थाम लेता उस भयंकर रागिणी को
फूटता पर यहाँ से दुश्वार हा-हाकार कोई

आज उस वीणा-व्यथा की
कब्र को भी खोजता हूँ
आज मेरे पास क्या है ?

है उमस छाई बना यह हृदय एक मसान मेरा
सहम कर सहसा रुका है आज यह तूफ़ान मेरा
टीस जो उठती कभी छाती पकड मैं सोचता हूँ
क्या गज़ब ढाए कि चिर से रुद्ध-गति है गान मेरा

कसक थी कुछ स्वप्न भी थे
आह थी कुछ चाह भी थी
आज मेरे पास क्या है ?

—::—

मैं क्या चाहता हूँ

मैं क्या चाहता हूँ, मैं क्या चाहता हूँ ?

मैं उठ उठ के फिर फिर

गिरा चाहता हूँ

मैं गिर गिर के फिर फिर

उड़ा चाहता हूँ

मैं क्या चाहता हूँ ...

हवा में महल
सैंकड़ों हैं बनाए
हृदय के विविधि रंग
उन पर चढाए
लिये ईंट पत्थर कि उनके तले आज
बुनियाद देना उठा चाहता हूँ।
मैं क्या चाहता हूँ...

बड़े कल्पना के
उड़ाए हैं घोड़े
य' जीवन है थोड़ा
मज़े हैं न थोड़े
मगर आज मैं खींच कर रास उनकी
कशिश का उठाना मजा चाहता हूँ।
मैं क्या चाहता हूँ...

लहर के थपेड़े
य' कितने बखेड़े
खुले पर रहे
मस्तियों के य' बेड़े
उठा आज चप्पू मगर एक गंगा
नयी ही बहा कर दिखा चाहता हूँ
मैं क्या चाहता हूँ...

य' नूपुर की आवाज़
कंकण की झंकृत
सुनी और होता
रहा मैं विकम्पित
उठा आज वीणा कि दरया स्वरों का
मैं पल भर में देना बहा चाहता हूँ
मैं क्या चाहता हूँ...

—::—

जीवन-पथ

(१)

दूर, हाँ मैं निकल आया दूर

\+ + +

मंजिलें तय कर चुका कुछ
कूदता मैं, उछलता मैं
दम लगाया, श्रम भगाया
पथ बनाया मचलता मे
आज पर दिल में अचानक
उठ खड़ी है एक शंका
ठीक तो है रास्ता क्या
पा सकूँगा सफलता मैं ?

(२)

जब चला था, जोश मुझ में
था, सफ़र की ताज़गी थी
रास्ता था और मैं था
एक ही बस धुन लगी थी
और मुझ को तब अखरता
यह अकेला-पन नहीं था
थे इकट्ठे लोग, मेरे
नाम की चर्चा जगी थी।

(३)

आज वे अपने घरों में
जा विराजे मैं अकेला
रह गया, सुनसान है वन,
आ पड़ी है कठिन बेला
हैं कदम बढ़ते, कभी रुक
कर चिहुँक कर चौंक जाता
सोचता हूँ व्यर्थ ही सिर
यह लिया मैंने झमेला।

(४)

और फिर तूफान की
मानिन्द ये सब भावनाएँ
हैं उमडती घुमडती कर शोर
दायें और बाये
सिर पकड कर बैठ जाता
राह की चट्टान पर हूँ
देखता पीछे जरा तो
हैं निकलती सर्द आहें

(५)

एक आशा की किरण पर
है चमक जाती उसी क्षण
वे हिमाच्छादित शिखाएँ
दे रहीं मुझको निमन्त्रण
उठ खड़ा तत्काल मैं
होता भुजाएँ तोलता हूँ
और एकाएक भर
उत्साह से जाता शिथिल मन

(६)

है मुझे विश्वास अपनी
शक्ति पर कुछ नाज़ भी है
जेब में सम्बल अभी है
राह का कुछ साज़ भी है
लौट भी जाऊँ अगर तो
क्या कहेंगे लोग सारे
है यही अड़चन कि मुझको
जग हँसी की लाज भी है।

(७)

उन सुनहली चोटियों की
दूसरी भी राह होगी
और दिल बहलाव भी
होगा, न कुछ परवाह होगी
मानता हूँ सब, मगर
जल्दी करूँ क्योंकर अभी से
सैर कर लूँगा उधर की भी
अगर कुछ चाह होगी।

(८)

यो निराशा और आशा
का महज़ पुतला बना मैं
पार जीवन की विषम
इन घाटियों से जा रहा मैं
है यही संतोष फिर भी
मैं चला तो जा रहा हूँ
क्यों न अपनी चाल को फिर
तेज़ ही कर दूँ ज़रा मैं।

—:•:—

चिलमची

चल पड़ा उस ओर हूँ
मैं चल पड़ा उस ओर ।

मैं चिलम अपनी दबाए
खींचता कश जा रहा हूँ
हाथ में कन्था सम्हाले
गीत पथ के गा रहा हूँ

भीड़ भभ्भड़ का महा—
मेला यहाँ ऐसा जुटा है
जो जरा सोया घुटा दम
और क्षण भर मे लुटा है

मस्त मैं भी दीखता हूँ
पर मुझे चिन्ता बहुत है
है फटी गुदडी अचानक
खुल न जाए छोर ।
चल पड़ा उस ओर हूँ मैं
चल पडा उस ओर ।

(२)

विश्व में सौंदर्य के स्वर
बज उठे हैं झनझना कर
नाचती परियाँ निरन्तर
हैं मधुर मुसकान सी भर

और मुझ को दे रहीं वे
आज महफ़िल का निमन्त्रण
हानि क्या है खुल पड़ें
दिल बहल जाए आज दो क्षण

किन्तु वे तो राह मेरी
रोकने को आ खड़ी हैं
और मुझ को खींचता
कोई उधर झकझोर
चल पड़ा उस ओर हूं
मैं चल पड़ा उस ओर।

(३)

बहुत दिन से विजय-दुन्दुभि
है बजाई आज मैंने
खोल दीं आंखे, अलख यह
है जगाई आज मैंने

दीप-दान

आज इस मन के खड़ा
मैदान में हो कर अकेला
दे रहा ललकार, ताकत
आज़माई आज मैंने

कौन बाधा ? विघ्न क्या है ?
है मुझे परवाह किसकी ?
देखना पल में फटेगी
यह घटा घनघोर ।
चल पड़ा उस ओर हूं
मैं चल पड़ा उस ओर।

—:—

‽

क्या जाने किस पूर्व जन्म के, युगयुग के संचित संस्कार
जाग उठे हैं आज हृदय मे, मचा रहे हैं हाहाकार

मध्य निशा के अंधकार में किसी निविड़ वट तरु के बीच
कही स्तब्धता भंग न हो जाए—भरसक सन्नाटा खींच

दम साधे कर रही चौकसी फैली सब शाखाएँ हों
सोते शुक-शावक शिशुओं की मानो प्यारी धाये हों

इतने मे अज्ञात भाव से खड़ खड़ वहाँ हो उठे शोर
और उचक कर चिडियों के बच्चे देखे बाहिर की ओर

ज्यों देखें, झट महाकाल की छाया सी कोई तसवीर
दीखे उनको हाथ बढाती हो जायें वे विकल अधीर

उसी भाँति है आज हृदय पर छाया यह सहसा अवसाद,
करुणा का कम्पन नस-नस में, बेहोशी, भीषण उन्माद

एक बार तो जी करता है मुक्त कण्ठ से रो दूं आज
जगती को चंचल कर दूँ औ' अपने को मैं खो दूँ आज

कारण ? कारण नहीं जानता क्यों ऐसी उठती है चाह ?
क्यों यों ही बैठा बैठा बस भरने मैं लगता हूँ आह

इतना ही बस मुझे पता है, है पीड़ा, कुछ है कम्पन
कहीं अकेला-पन पा जाऊँ आ जाए कुछ हलका पन

डरता हूँ पर जब तक ढूंढूं मैं कोई निर्जन एकान्त
इसी बीच ही कहीं हृदय की कसक न हो जाए कुछ शान्त

रोक थाम से क्या होगा क्यों व्यग्र हो रही हो पलको
किस दुविधा में पड़े आँसुओ ! रुके वहीं छलको छलको

बरबस बरस पड़ो स्वागत है, हे मेरे हिय के उद्गार
फूट पड़ो उमड़े मेघों से फूटे ज्यों जल की बौछार

—:—

विडंबना

मेरे जीवन के अतीत पर विस्मृति का पट डाल
तेरी पूजा को मन्दिर में
माँ जब मैं आता हूँ
अपने हृदयाञ्चल को निर्मल
उज्ज्वल — तर पाता हूँ

किन्तु विवश हूँ तनिक कालिमा
पहले की जो लगी यहाँ माँ
जितना हृत्पट को धोता हूँ
हन्त दीखती उतनी वह भी गहरी तथा विशाल
मेरे जीवन के अतीत पर......

(२)

स्मृतियाँ लहरों सी आती हैं
फिर फिर मुझको उकसाती हैं
किन्तु सभी को ठुकराकर मैं
मदिरा की मस्ती ला कर मैं
ज्यों ही अपनी गाने लगता
निद्रा से हूं तत्क्षण जगता
सभी तार झन झन कर उठते
और बेसुरा हो जाता है मेरा सब सुर ताल ।
मेरे जीवन...

—:·—

प्रलय-गीत *

(१)

वे जीवन की रातें बीती
स्वप्न - जगत की बातें बीतीं
इस का कुछ आभास नहीं था
'यों होगा' विश्वास नहीं था।

(२)

लोग घेर कर बैठे थे सब
दिल पर अभी न बैठे थे तब
आशा सब को जगा रही थी
भय को मन से भगा रही थी।

---

* अपने पिताश्री की मृत्यु पर।

(३)

क्या जाने कुछ झोंका आया
सहसा आकर दीप बुझाया
हुआ वही जो कुछ होना था
बचा वहाँ रोना धोना था।

(४)

मेरे सुख का लुटा खज़ाना,
हुई प्रलय, सब फिरा ज़माना
नई प्रेम की ताँतें टूटी
अन्तर की सब ओतें टूटी।

(५)

दृश्य प्रलय का स्पष्ट हो उठा,
मनोत्साह प्रभ्रष्ट हो उठा,
बँधी धुक धुकी, हृदय रुक गया,
अभी खिला था फूल झुक गया।

(६)

तमसावरण नेत्र के आगे
छाया, बन्द न हुए अभागे
किन्हीं ग्रहों की भूल-चूक से
किंकर्तव्य - विमूढ - मूक से।

(७)

'सम्भव है यह सत्य नहीं हो
आशा अब भी बची कहीं हो
होवें भ्रम में भटके सब ही
प्राण कहीं हो अटके अब भी।'

(८)

इस विचार के आते ही झट
एक बार फिर खुले हृदय - पट
लौटी फिर अभिलाषा मन की
लगी उचकने आशा मन की।

(९)

ध्वनि विलाप की किन्तु व्यथा कर
तत्क्षण अन्तःपुर से आकर
उड़ा ले गई नव अभिलाशा
बनी निराशा मेरी आशा ।

(१०)

ज्यों सावन की मेघ-गर्जना
क्षोभ विषाद-युक्त तर्जना
के होते ही विद्युत झट से
ढँप जाती है काले पट से ।

(११)

बूँदें झट झरने लगती हैं
धार धार गिरने लगती हैं
खड़ा खड़ा ही वैसे ही मैं
ज़ार जार रो पड़ा तभी मैं ।

(१२)

किन्तु उसी क्षण हृदय रोक कर
किसी भाँति निज न्यून शोक कर
लगा सोचने स्तब्ध अचानक
(शान्त दशापर अधिक भयानक।)

(१३)

बहनें कितनी बिलख बिलख कर
शून्य दृष्टि से निरख निरख कर
रोदन करती निरवलम्ब सी
गोदी मे विक्षिप्त अम्ब की ।

(१४)

जो मुझ को रोता देखेगी
यों धीरज खोता देखेगी
कितनी मन मे आकुल होंगी
तड़पेंगी अति व्याकुल होंगी ।

(१५)

कहीं न मेरे कोमल मन में
लगे ठेस ऐसी कुछ चण में
अदल बदल अब तब जाऊँ मैं
दुःख भार से दब जाऊँ मैं।

(१६)

सम्भव है मां रो न रही हों
यही सोच धृति खो न रही हों
कितनी भी उद्भ्रान्त बनी हों
बाहर से पर शान्त बनी हों।

(१७)

पर मुझ को विक्षिप्त देख कर
अश्रु-वाष्प-संलिप्त देख कर
कब तक दिल को करके पत्थर
बैठेंगी ? रो देंगी सत्वर ।

(१८)

यों ही चला विचार मग्न मैं
लेकर व्यथा हृदय-भग्न मैं
पोंछी अश्रु-धार आँखों की
और युक्तियाँ भी लाखों की।

(१९)

कहीं उछलती हृदय - वेदना
छलक चेहरे पर आए ना,
प्राण प्राण में अति विरक्ति भर
चला हृदय को थाम शक्ति भर।

(२०)

बरबस हृदय रो उठा भीतर
उत्कल कातर हो उठा अंतर
लगा उसे मैं यों समझाने
प्यासा होकर प्यास बुझाने।

(२१)

"अरे हृदय! तू हृदय वही है
सदा साधना रही यही है,
तेरे स्वप्न यही होते थे
बीज धैर्य का जो बोते थे—

(२२)

'कभी आपदायें भीषण तर
बना झुण्ड आएँ जो तुझ पर
ज्यों लहरें बल खाती आतीं
किसी शिला से हैं टकरातीं—

(२३)

वैसे ही वे आ आ करके
पत्थर सा तुझ को पा कर के
लौटेंगी, यह जग देखेगा
तुझको सदा सजग देखेगा।'

(२४)

"भाव सभी क्यों भूल गया तू !
कर उन से क्यों कूल गया तू ?
कठिन तपस्या कर के फल को
लगा-छोडने तू पागल हो ।"

(२५)

यथा धनञ्जय चक्र - व्यूह मे
घिरे चतुर्दिक रिपु - समूह में,
व्याकुल कर रिपु के प्राणों को
निष्फल कर उन के बाणों को—

(२६)

फिर भी स्थिर थे धैर्यभाव से
और शान्ति से, अतुल चाव से
रथ-अश्वों की तृषा-निवारण
करते थे, कर जल निस्सारण ।

(२७)

उसी भाँति रे हृदय बावले !
नित नूतन उपमाओं को ले
राह आपदाओं की तू नित
देख सदा होता था सज्जित।

(२८)

'कब तुझ पर भी दायें - बायें
भीषण दुःख - घटायें छायें
और न तू हो किञ्चित विह्वल
सहज भाव से पल में दे दल।

(२९)

तथा पार्थ की भाँति तभी तू
निज परिजन के कष्ट सभी तू
करदे होकर युक्त निवारण
कर के सुख का स्रोत प्रसारण।

(३०)

अरे हृदय ! फिर आज अज्ञ सा
शिथिल प्राण हो लुप्त-प्रज्ञ सा
क्यों शंकित है स्तब्ध हो रहा
शोक-वह्नि से दग्ध हो रहा ?

(३१)

उठ साहस का करके संचय
सहन शक्ति का दे दे परिचय
गिरा आपदा का गोवर्धन
थाम, सुखी हों सारे परिजन ।"

(३२)

इस प्रकार से अस्त व्यस्त सा
मौन अचंचल मुनि अगस्त सा
शोक-समुद्र पी गया सारा
बल तोला फिर धैर्य सँवारा

(३३)

पग फिर धीरे धीरे धर कर
भाव भूरि, मानस में भर कर
सहज भाव से हँस कर देखा
अभिनय सब पूरा कर देखा ।

(३४)

कहीं न जाकर रंगमञ्च पर
रह जाए त्रुटि दोष रञ्च भर
बिगड़ खेल जाए, पल भर मे
मच कुहराम जाय घर भर मे ।

(३५)

और वहाँ फिर जा पहुँचा तब
बैठे बन्धु जहाँ पर थे सब
गिरि का स्रोत दूर से आता
है समुद्र में ज्यों मिल जाता ।

(३६)

और वहाँ संगम होने पर
जिस प्रकार होता घर-घर-रव
क्षुब्ध सकल परिवार हो उठा
भीषण हाहाकार हो उठा।

(३७)

जाग उठी स्मृति, जो विलुप्त थी
आग उठी जल, जो प्रसुप्त थी
राग-विराग-विवेक भग गया
रोग मोह का एक लग गया।

(३८)

मेरे मन की सकल साधना
वह विवेक वह धैर्य बाँधना
शिथिल तार हो लगा छूटने
बन्ध धैर्य का लगा टूटने।

(३९)

उस अति करुणायुत विषाद ने
महा भयंकर आर्तनाद ने
धीरज का अवसान कर दिया
भीषण एक मसान कर दिया।

(४०)

कलश पूर्ण कोई हो जल से
और चोट पड़ जाए बल से
टूट फूट कर गिर जाता है
जल सब निकल बिखर जाता है।

(४१)

त्यों घट मेरे अन्तस्तल का
(पूर्ण पात्र जो शोक - सलिल का
था, जिस को था थामा भरसक)
फूट गया खा चोट अचानक।

४१)

उमड़ा सोता अन्तर्‌तर से
रुद्ध वेग था कितने चिर से !
लोचन मार्ग खुला वह पाकर
बहने लगा एक दम आकर।

४३

हा मम तात! प्राण से प्यारे!
मन के मोद! आँख के तारे!
क्षमा-सिन्धु थे तुम निर्भय थे
कितने गुणी उदार हृदय थे !

(४४)

मेरे हृदय विराजमान थे
तन दो थे पर एक-प्राण थे
सदा तुम्हारी आँखों में मैं
योग्य पुत्र था लाखों में मैं।

(४५)

खिलते थे मेरे आने पर
मुरझा कर मेरे जाने पर
मेरी अम्मीं से तुम सहसा
करते मेरी बहुत प्रशंसा ।

(४६)

मैं भित्ती में कान लगा कर
सुनता था सब ध्यान लगा कर
गद्गद होता था चण चण में
उठता था मेरे यों मन में ।

(४७)

झुक कर शतशत वन्दन करके
चरणों में तव मस्तक धर के
लूँ आशीष तुम्हारा आ कर
उठ कर पुनः जगत् में जाकर ।

(४८)

बनूं गुणी मैं नाम कमाऊँ
कीर्तिनाद से जगत गुँजाऊँ,
आ! तुम कितने प्रमुदित होगे
मन मे अति आनन्दित होगे।

(४९)

कीर्त्ति - लालसा सम्पादक हे!
हे जीवन-धन! उत्पादक हे!
सखा बन्धु हे! उद्भावक हे!
गुरो! शिष्य! लालक पालक हे!

(५०)

नाते सब तुम तोड चले हो
सहसा हमको छोड चले हो
क्या जग सचमुच ही सपना है!
नहीं यहाँ कोई अपना है!

(५१)

'यह सपना है तथ्य नहीं है,
झूठ सभी जग सत्य नहीं है'
कोई यदि मुझसे कहता था
मैं झट यों उत्तर देता था—

(५२)

ये सब कहने की बातें हैं
ख़याल सभी को ये आते हैं
किन्तु बुढ़ापे के आने पर
बीत युवापन के जाने पर।

(५३)

अभी युवा था ध्यान नहीं था
यह विवेक, यह ज्ञान नहीं था
आज किन्तु खुल आँख गई है
उठ जग से सब साख गई है।

(५४)

जग मे सुख की स्मृति आती है
मन में सुख ही उपजाती है
किन्तु दशा विपरीत यहाँ है
लाती सुख-स्मृति दुःख महा है।

(५५)

वे सुख के दिन मन मे आते
तत्क्षण अश्रु नयन मे आते
जब तुम सूर्य उदय होते ही
मुझे छोड करके रोते ही—

(५६)

चल देते थे शीघ्र रिझा कर
देकर लोभ और समझा कर
मैं भी चुप हो रह जाता था
यही सोच सब सह जाता था।

(५७)

सन्ध्या को 'पापा' आवेंगे
मन चाही चीज़ें लावेंगे
राह तुम्हारी बड़ी देखता
घड़ी घड़ी था घड़ी देखता ।

(५८)

तब चुपचाप वहाँ तुम आते
बैठ किसी कोने में जाते
देकर कुछ उपनाम प्यार से
मुझे बुलाते थे दुलार से ।

(५९)

मैं भागा भागा आता था
और लिपट तुम से जाता था
सुन कर तान मधुर मोहन की
क्या गौएं भी भागी होंगी ?

(६०)

आज किन्तु यह सन्ध्या वेला
बीती, मैं हा ! हन्त ! अकेला--
देख रहा हूँ राह तुम्हारी
अभी न मैंने हिम्मत हारी ।

(६१)

'तुम आओगे तुम आओगे
आकर बैठ यहाँ जाओगे'
कोई मुझ से कह जाता है
जाता धीरज रह जाता है ।

(६२)

आह ! किसी ने मुझे बुलाया
वह देखो, वह देखो आया
अरे ! पवन का झौंका है यह
हुआ मुझे बस धोखा है यह ।

(६३)

अरे ! वृक्ष की कौन ओट है
खड़ा मौन यह ? वही कोट है,
वही वेश है वही वेश है,
शंका संशय का न लेश है।

(६४)

कहीं ध्यान से वे जग जाएँ
और अकारण फिर भग जाएँ
चलूँ वहाँ पर पीछे पीछे
मैं चुपचाप श्वास निज खींचे।

(६५)

हन्त ! हुई यह पुनः वञ्चना
दूँ विधि को या किसे लाञ्छना !
दोष दृगों को दूँ मैं कैसे
स्वयं हो रहे विह्वल ऐसे।

(६६)

मन पर से विश्वास उड गया,
चेतन भी बन आज जड गया
जड सारे कर जीवन धारण
बन कर मेरे भ्रम का कारण—

(६७)

तात पाद की प्रतिमा लाते
ठौर ठौर पर मुझे दिखाते
मैं भागा भागा जाता हूँ
किन्तु तभी ठोकर खाता हूँ।

(६८)

सन सन वेग वायु का करता
आश्वासन मन मेरे भरता
सकल प्रकृति आलिंगन करती
तत्क्षण मेरी पीडा हरती।

(६९)

किन्तु बिखर सब सुख पल भर में
जाता, ज्यो ही प्रत्युत्तर मे
आलिंगन करने लगता हूँ
निद्रा से अपनी जगता हूँ।

(७०)

शून्य गगन को पाता हूं मैं
मन मारे रह जाता हूँ मैं
फिर फिर धोखा खाता हूँ मैं
फिर संज्ञा में आता हूं मैं।

(७१)

वे जीवन की रातें बीती
स्वप्न-जगत की बातें बीतीं
इस का कुछ आभास नहीं था
'यों होगा' विश्वास नहीं था।

—::—

बाती

अँट गई री

छँट गई री

स्नेह—बाती

बँट गई री।

५३

प्रथम किरण

आज किरण आई
स्वच्छ हुआ मन मलीन
भाग गया भाव दीन
पुलक उठा रोम रोम
हुआ आज भार—हीन
हर्ष की हिलोर उठी, नव उमंग छाई
आज किरण आई।

२

उठो अरे अमर पुत्र
सफल करो सकल कृत्य
कौन फूँक गया मन्त्र
आज कान मे विचित्र

ध्वनि गँभीर सुनी, चौंक दृष्टि झट उठाई
आज किरण आई ।

३

भीग गए नयन युगल
थिरक उठे चरण युगल
हृदय-कमल-मुकुल खिला
खुले चपल अधर युगल

उठा, निशा-पीत शिखा दीप की बढ़ाई
आज किरण आई ।

४

हुआ आज नवल प्रात
लिए उषा हेम पात्र
स्मित सुधा रही उड़ेल
सिहर उठा सकल गात्र

चढ़ा हाथ रही छेड़, अंगुली छुवाई
आज किरण आई।

समत्वं योग उच्यते

इतना गर्व यार मत करना

जिससे अन्तःस्तल मे सहसा छा जाए अवसाद

भृकुटि तान अन्धड़ के सन्मुख

खड़ा व्यर्थ क्यो शक्ति खो रहा

अरे बढा चल नहीं देखता

उधर सूर्य है अस्त हो रहा

किन्तु राह देने से पहले

ज़रा देख लेना, मन मे है नहीं विराग-विषाद।

(२)

लक्ष्य - सिद्धि की रहे भावना
बल साहस से भरा हृदय हो
सकल विघ्न-बाधा टल जाएँ
जिधर बढ़ चलें जय ही जय हो
किन्तु सजग रहना पग पग पर
कहीं न कलुषित करें हृदय को द्वेष दम्भ उन्माद ।

(३)

संयम हो भीतर दृढ़ मन हो
किन्तु न बाहर रूखापन हो
मौन मधुर संकोच रहे पर
ज्ञान गँभीर आत्म - चिंतन हो
भस्मसात हो सकल वासना
किन्तु जागते रहें निरन्तर करुणा, स्नेह प्रसाद ।

(४)

उठें तरंगें दायें बायें
कितना ही 'अभ्युदय' जताएँ
मानस के अन्तरतर में पर
सोता "निःश्रेयस" को पाएँ
भाव त्याग का सदा रहे पर
सावधान रहना पट ओढ़े प्रगटे कहीं प्रमाद।

—::—
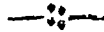
गंगा-यमुना

गगा तुम्हे प्रणाम करू या यमुना तुम्हे प्रणाम करूं

तू शीतल वह दाह भरी है

तू प्रशान्त वह आह भरी है

तू गगा मैया जग की वह

सखी कृष्ण की चाह भरी है

तू कल कल करती अविकल चल

तू छम छम चलती छलती चल

इधर मुक्ति निष्काम लूट लूं

उधर जगत के काम करूं

गगा तुम्हें प्रणाम करूं ······ ·····

२

तेरे तट पर ऋषि मुनियों के
तीर्थ, तपोवन, धाम खड़े
और तुम्हारे ताज महल में
युग युग के अरमान गड़े
मिलन मन्त्र का सिखा जाप तू
विरह पंथ का मिटा ताप तू
यहां हर सुबह करूं ध्यान मैं
वहां बैठ कर शाम करूं
गंगा तुम्हे प्रणाम.......... ...

३

एक हिमालय की जायीं दो
किन्तु पृथक पथ से आयीं दो
एक महोदधि की सेवा को
कलश सलिल के भर लायीं दो
बाधा एक टालती जग की
राधा एक साँवरे वर की
यहाँ बैठ कर सुधा सँजो लूं
वहाँ बैठ कर जाम भरूं
गंगा तुम्हे प्रणाम ....

४

तू उजली हिय की विशाल है
वह गँभार गहरी कराल है
तुझ मे भरा दूध लासानी
उसमे तलवारों का पानी
तू गौरी जग की कल्याणी
बनी भानुजा भव्य भवानी
इधर करूँ विश्राम उधर
गति चरणों की उद्दाम करूँ
गगा तुम्हें प्रणाम..........

—::—

(२)

द्वार पर प्रियतम खड़े हैं
मिलन की है चाह मुझको
तोड़ दूँ दीवार, दिल मे
है अमिट उत्साह मुझको
आँख का परदा खिसक
जाता ज़रा, तब झांक लेता
दीखती वह साफ़ मेरी
मुक्ति की है राह मुझको

(३)

क्या कहा-"जीवन व्यथा का
भार है, उल्लास कैसा ?
कैद मे परिहास कैसा
और मोद विलास कैसा ?
पीसना चक्की मुझे है
क्यों न कितना छटपटाऊँ?
नियति का बन्धन अटल है
फिर कहो यह त्रास कैसा ?

(४)

तुम बँधे हो, मैं बँधा हूँ
सब बँधे, अरमान कैसा ?
आह कैसी दाह कैसा
और यह तूफ़ान कैसा ?
क्यों न अपने कैदियों से
आज हम कुछ प्यार करलें
चूम लें, पलकें बिछादें
ऊब या अवसान कैसा ?

(५)

भूल कर इन बेड़ियों को
मैं यहां खुल खेलता हूँ
और जेलर की कड़ी इस
जेल को मैं झेलता हूँ
चाम की उन चाबुकों के
चिन्ह जिनकी पीठ पर हैं
मैं पिला कर जाम उनके
दूर दुख को ठेलता हूँ।

(६)

है लगा इस क़ैदखाने में

अजब कुछ आज मेला

दूर करके सब झमेला

मस्तियों का घट उड़ेला

हँस रहे हैं मिल रहे

पागल बने सब यहां कैदी

मैं तमाशा देखता हूँ

बीच में सब के अकेला।

—::—

लौं

लौ जागी, भाग जागा
उर का अनुराग जागा
बल उठे बल, साध खुली
भय का सब भाव भागा।

—::—

स्मित-विस्मित

तुम बिजली सी चमकी मैं चौंका
फिर डूब गया घन तम में
भ्रम मे
दुविधा में
स्मृति और व्यथा में
घन घर-घर कर गहराए, मैं बैठ गया
निज छाती थामे

(२)

आया सहसा मलयज का झोंका
तब सिहर उठा मैं तत्क्षण
कम्पन
विद्युत्कण
से जाग उठा मन
स्मित-विस्मित होकर सुना तुम्हारे कंकण
का मधुर निमन्त्रण

— ०—

सुन्दरम्

सुन्दर तन मेरा सुन्दर मन
सुन्दर मुझ को जग का कण कण

तारे सुन्दर टिम टिमा रहे
अंबर में चन्दा चहक रहा
सरितायें मिल खिलखिला रहीं
सागर मिल सबसे लहक रहा

आती है उषा जगा जाती
रजनी है नया नशा लाती

मैं सबको गले लगा लेता
भर भर देता भर भर लेता
पंछी मुझ को लगते प्यारे
प्यारा लगता है मुझे पवन
सुन्दर तन मेरा. ...

(२)

अलि कलियो के दल रहे चूम
सब राग रग मे रहे झूम
डाली पर कोयल उठी बोल
सौरभ में मिसरी रही घोल
छाया है नूतन आज रग
छाई है सब मे नव उमग
नारी नर निकले सग सग
निकले हो मानों रति अनङ्ग

चुपचाप सभी को रहा देख
हो रहा देख कर आज मगन
सुन्दर तन मेरा......

(३)

प्रिय मुझको तीखी हाला भी
प्रिय होठ चाटवी वाला भी
उसमे यौवन का ज्वार भरा
उसमे बचपन का प्यार भरा

है नहीं आज कोई अपूर्ण
जो है अपूर्ण हो रहा पूर्ण
सिर माथे जो बज रहे आज
होठो पर जो हैं, भग्न साज

मै कॉप रहे इन हाथो से
करता दोनो पर स्वर नर्तन

सुन्दर तन मेरा ......

(४)

जो हैं जग का उल्लास लिये
उनका हू मै मधु-हास लिये
जो हैं निज हृदय निराश लिये
मैं हू उनकी भी, प्यास लिये

दुख सुख घुल मिल कर हुए एक
इस एक जगत में जग अनेक
बाँये में फिरता लिये पाप
दाँयें पर बैठा पुण्य आप

सुन्दर नीचे के वन-उपवन
सुन्दर ऊपर का नील गगन
सुन्दर तन मेरा......

५

खेतों मे जो हल चला रहे
वे हैं मेरा मन चला रहे
महलो वालो का भला रहे
जीती उनमें नव कला रहे
मुझको सहलातीं सुबह शाम
बहलाते आठों मुझे याम
मुझको है वृंदावन प्यारा
मुझको द्वारिका भवन प्यारा

धन से है मुझको वैर नहीं
निर्धन है मुझको नारायण
सुन्दर तन मेरा...

(६)

जो रण में हैं हुंकार रहे
जुग जुग जीती तलवार रहे
जिनके पॉयल झंकार रहे
उनकी भी सदा बहार रहे

हिमगिरि पर मैं चढ़ जाता हूँ
मैं गंगा में बह जाता हूँ
मैं मन की मौज लिये, मन में
आता जो कुछ कह जाता हूँ

बिजली मुझको चौंका देती
नहला देते सावन के घन

सुन्दर तन मेरा......

—:—

नव-रस

(१)

लिखूं क्या चित्र मैं इस चांदनी का
खिचा इक चित्र सा जब रह गया मैं
कलम मेरी चलेगी खाक पत्थर
खुमारी मे स्वयं जब बह गया मैं

(२)

गगन से चाँदनी उतरी थिरकती
मुझे सूझा नवल 'शृंगार' मेरा
नवोढ़ा नायिका चुप चाप आई
यहाँ करने अतुल अभिसार मेरा

(३)

'करुणा' पर सैंकड़ों कवि कह गए हैं
नये आँसू कहो क्यों कर बहाऊं?
पुराने घाव ही अब तक हरे हैं
उन्हें नासूर ही क्या मैं बनाऊं?

(४)

हँसो मेरी हँसी गर हँस सको तुम
मुझे हर बात है झट गुद गुदाती
ज़रा मुसकान तो भर कर बुला लो
हँसी जाने कहाँ से फूट आती

(५)

मगर मुझ से न यों खिलवाड़ करना
कहीं मैं तीसरा निज नेत्र खोलूं
मसल डालूं कि तारे चीज क्या हैं
कि बायें हाथ पै संसार तोलूं

(६)

किसे साहस कि मेरी राह रोके
सकल जल थल कि थर थर कांपते हैं
जरा मैं होश की मदिरा चढ़ा लूं
कि मेरी छांह तक सब भांपते हैं

(७)

मगर तूफ़ान की गड गड़ कहां यह
अचानक बीच में देती सुनाई
पकड छाती सहम जाता तभी मैं
उठा कर बांह निज देता दुहाई

(८)

नशा काफूर हो जाता पलक में
गिरेबाँ मे नज़र जब डालता हूं
चिहुँक जाता कि दिल में देखता जब
नरक के घोर कीड़े पालता हूँ

(९)

यवनिका है बदलती दूसरे क्षण
बदल जाता यहां का सब नज़ारा
सकल आवेश पल में शान्त होते
बरस जाती हृदय में पुण्य धारा

(१०)

तमाशा है कि जादू है कि क्या है
अजब जीवन बना व्यापार मेरा
मुबारिक हो तुम्हें रस-सिद्धि रे कवि,
बना रस का यहां संसार मेरा

—::—

चूक

एक ज़रा सी भूल

बीत गये युग किन्तु आज भी उपजाती है शूल

श्रान्त किन्तु फिर भी तरसा था

लहरों का स्वागत करता था

यही सोच कर—पीछे तट पर भरकर मृदु मुसकान

खड़े हुए हो, तुम को मेरे श्रम का है अनुमान

दुख अपना सब भूल

हाथ पैर पटके द्रुत गति से
स्वप्न ले रहा था इस मति से
मेरी इस मस्ती पर कोई करता होगा 'वाह'
सही, वेदना से ही मेरी उठे तुम्हें कुछ चाह!
किन्तु हुआ प्रतिकूल।

वह संध्या वेला शुचि श्यामल
वह सरिता तट का मृदु कलकल
मुँह फेरा, मुँह ज़रा तुम्हारा देखूँ तो अवदात
किसे पता था अनजाने मे यह इतनी सी बात
पकड़ जायगी तूल?

मेरे श्रम का मोल घट गया
स्निग्ध तुम्हारा भाव हट गया
और नहीं तो तुम हँस पड़ते यों न ठठा कर आह!
हँसी तुम्हारी बसी आज भी उर मे बन कर दाह।
हुआ यत्न सब धूल।

—::—

धीरे ! धीरे ! धीरे !

मैं भूल चला था तुम्हें कि तुम
सपने में उतरीं
धीरे, धीरे, धीरे !
संध्या आई मुँद गई आँख
उतरी रजनी मैं हुआ सुप्त
जाने किस शुभ पल में निकल
तुम प्राची में आ खड़ी झाँक।
मैं उठा और उठ लिपट गया
तेरी किरणों मे
धीरे, धीरे, धीरे !

(२)

शत बार तुम्हे मेरा प्रणाम
तुम क्षीण हो गईं
धीरे, धीरे, धीरे !

क्रम से मर्मर ध्वनि हुई शान्त
रह गया शून्य सिकता कछार
जाने किस प्रस्तर से उभर
गुञ्जरित कर गई सकल प्रान्त।
मैं उठा और उठ डूब गया
तेरी लहरों में
धीरे, धीरे, धीरे !

(३)

हे मेरे प्राणों के सूत्र प्राण
निष्पन्द हुए तुम
धीरे, धीरे, धीरे !

दीप-दान

हिम से शीतल निर्मम कठोर
कण कण में कुहरा हुआ व्याप्त
छगुनी से तुमने छुआ मुझे
मैं तड़प उठा हो गया बिभोर
मैं उठा और उठ मचल उठा
तेरी बाँहों में
धीरे, धीरे, धीरे !

— —

उसका ख़त

ख़त है अजब यह एक या कोई सितार है

इसका हर एक शब्द बना एक तार है

उठती मधुर झंकार सी ज्यों ज्यों गुनो इसे

फिर फिर पढ़ो, फिर फिर गुनो, फिर फिर धुनो इसे

इस ओर पढ चुका तो पढ़ा दूसरी तरफ

उस ओर पढ़ चुका तो आया ख्याल इस तरफ़

नीचे पढा तो रह गईं ऊपर की लाइनें
बायें पढा तो रह गया कुछ खत के दाहिने।

जब यों न जी भरा तो मैंने फिर पढा पता
जैसे कि वह भी बात कोई हो रहा बता।

जी तो भरा न, उसे कई बार पढ गया
आँखो में मेरे पानी हाँ जरूर भर गया।

री फूट जाओ आंख,क्या तुमने सितम किया
मैने कहा यों और उसका खत खतम किया।

—:—

हार
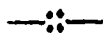
मैं बढ़ा जा रहा पथ अपने
था लिये मगन मन
आँखों में ज्योति, पुलक हिय में,
चरणों में कंपन

पद चाप किसी की कानों में
दी तभी सुनाई
विस्मय में डूबी पाँखें ले
सहसा तुम आई

दीप-दान

मैं थिहर उठा पर क्षण भर में
फिर थम कर बोला
है कौन शक्ति जो खींच तुम्हे
इस पथ पर लाई

तुम हँस दी और अभी उर में
वह हँसी गँसी है
मेरे प्राणों की मिसरी में
वह फाँक फँसी है

"मैं स्वयं शक्ति हूँ", अनायास तुम
हँस कर बोली
मेरे पौरुष से चली तुम्हारी
सहज ठठोली

मैं रुका किन्तु क्षण भर में
अपनी पेंग बढ़ाई
तुम अड़ीं किन्तु क्षण भर मे
मैंने बाँह छुडाई

तुम रही खींचती मुझे, लिए
रेशम की डोरी
मैंने भी तब से तुम से
हारी होड लगाई

गिरि, वन पथ, निर्झर जाने
कितने पार किए हैं
कितने तब से सूने कोने
गुजार किए हैं

मैं चला जा रहा मूँदे अपनी
दोनों आँखें
कितने पर तुमने सोने के
संसार किए हैं

जो अधर अछूते रहे, आज
वे प्यास बढ़ाते
जो शिथिल रहे भुज बन्धन
हाँ, वे घट कर आते

मेरे ये नयम निगोड़े जिनकी
कभी न मानी
वे नयन तुम्हारे नयनों की हैं
राह बताते

मैं आज लिए प्राणों मे
तुम को घूम रहा हूं
मैं बीन बीन निज पथ के
काँटे चूम रहा हूं

जिस हलाहल के तीखे पन से
तडप उठा था
मैं उसी छलकते घट को
लेकर भूम रहा हूं

टुक कहो सजनि! इस पथ का
क्या उपहार यही है?
है विजय तुम्हारी पर क्या मेरी
हार यही है?

मत मुझे उड़ाओ हँस कर यों
तुम मेरी रानी
मैं खड़ा आज मँझधार या कि
यह पार यही है ?

—:;—

खुलें

प्रिय कहां तक कहो यह तूफ़ान हम रोके रहेंगे

उमड घन नभ में खड़ा है

व्यथा वसुधा की बड़ी है

खुलें, खुल कर गले मिल लें

कौन बाधा आ अड़ी है ?

पवन ठिठका, रुके पंथी

लुके पंछी नीड अपने

झुके फल, चलदल अचंचल

सजल होने चले सपने

बूंद क्या दो बूंद क्या, ये बरस कर दोनों बहेंगे।

प्रिय कहां तक...

(२)

चल रहे जाने न कब से
सुध सकल जग की बिसारे
तुम न हारी मैं न हारा
निठुर पहरेदार हारे

पड़ा सहरा सामने पर
पार की परवाह क्या है
चलो सजनी, बढ़ चलें, जब
चाह है तब राह क्या है

बरसती वह आग नभ की
तपन बालू की सहेंगे
प्रिय कहां तक...

(३)

आग अधरों की जगालें
प्यास प्राणों की बुझालें
तार श्वासों के मिलालें
और ढालें और ढालें

चल रहा जो ज्वार भाटा
यहां दो दो जलधियो मे
बांध तोडें हाथ छोडें
अब न अपने को सम्हालें

भूल जाएँ आज सखि, कल
दिल हमारे क्या कहेंगे
प्रिय कहाँ तक......

—::—

लौट चलें

हम लौट चलें उस पार सखी
हम लौट चलें......

शीतल छल-छल लहरें छितरीं
हम हाथ मिलाये बढ़े चले
तट दूर रह गया पल भर मे
जल हुआ हमारे गले गले

तुम थिहर उठीं क्यों सिहर उठीं
अब आ पहुँचे मॅझधार सखी
हम लौट चलें......

(२)

तूफ़ान भयंकर देख डरीं
लहरोंका वह गर्जन - तर्जन
आओ दम लेलो दमभर को
क्यों कांप रहा मन कोमल तन

ये मौन तुम्हारे प्रश्न दृगो के
सहने हैं दुश्वार सखी
हम लौट चलें...

(३)

ज्यों ही तुमने सकेत किया
झट धूल उड़ाता मैं आया
मृदु लतिका सी आ लिपटीं तुम
मैं वट विशाल सा लहराया

पर सह न सकोगी अंधड औ'
पतझड़ का यह तूमार सखी
हम लौट चलें......

(४)

ओले ये गोले पत्थर के
सिर माथे हैं स्वीकार मुझे
बिजली क्यों आँखें दिखा रही
यह धमकी है बेकार मुझे

पर सह न सकूँगा कभी तुम्हारे
गोले ये उद्गार सखी
हम लौट चलें......

(५)

तुम कहो बसा दूँ प्रिये एक
पल भर में मैं संसार नया
अधमुँदी खोल पलकें करदूँ
अपना सपना साकार नया

पर भुला सकोगी क्या अपने
चिर संचित तट का प्यार सखी ?
हम लौट चलें......

(६)

चल उधर मधुर मन्थर समीर
करता है अधिकाधिक अधीर
कल-कल करता परित्यक्त तीर
देता है उर को इधर चीर

इन इधर उधर के झटको से
पाऊँ क्यों कर उद्धार सखी
हम लौट चलें उस पार सखी

—::—

विदा

मैं बोला-"रोती हो क्या ? हँस कर अब मुझे विदा दो
वह बोली—कहते हो क्या, ऐसा कठोर दिल ला दो

यह कहते ही झट उसके नैनों से फूटी धारा
मैने अपने को रोका, पर विफल गया श्रम सारा

मेरी आँखें भर आईं तब वह सहसा चुप हो ली
अंचल से पलकें पोछी, कुछ हलकी होकर बोली

मैं अबला थी, रोती थीं-तुम पुरुष हुए रोते हो
मेरे दिल में चलते दिन क्यों कांटे ये बोते हो
मैं ठिठक गया यह सुन कर उसकी मृदु करुण कहानी
हँस उठा सग मेरे तब मेरी आंखों का पानी

सुख दुख के हम दो साथी यों रोते और विहँसते
जाने कब विदा हुए हम मिलने को रहे तरसते

—::—